International Journal of Arts & Education Research

दार्शनिक ग्रन्थों के अनुसार पौराणिक व दार्शनिक सर्ग के अन्तर का संक्षिप्त मूल्यांकन

[1]देवेन्द्र कुमार , [2]डॉ.नागेंद्र नागर , [3]डॉ.सरोज चौधरी
[1]शोध छात्र , [2]शोध निर्देशक, [3]सह-शोध निर्देशक
[1,2,3]सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बरी,
झुंझुनू, राजस्थान

सर:
प्रस्तुत पेपर पर विचार करने से पूर्व यह वर्णन करना आवश्यक है कि पुराणों का उद्भव पहले हुआ या दर्शन ग्रन्थों का। महाभारत में सांख्य व योग को सनातन शब्द से अभिहित किया गया है जिससे इनकी प्राचीनता ध्वनित होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सांख्य व योग महाभारत से पूर्व अस्तित्व में थे। बुद्धकालीन समस्त वातावरण सांख्यमय था। सांख्य प्रभावित बुद्ध ने जीवन दुःख के हेतुओं की संख्या और बौद्ध दर्शन समन्वित व्याख्या प्रस्तुत करने वाले सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। मत्स्य पुराण व पद्म पुराण में कपिल को सर्वसिद्धियों का स्वामी तथा सांख्यप्रणेता कहा गया है। महाभारत में भी इन्हें सांख्य और योग का प्रर्वतक कहा गया है। ब्रह्मसूत्र की रचना काल के विषय में कोई बहिरङ्ग प्रमाण उपलब्ध नहीं होता परन्तु इसके अन्तः साक्ष्य से यह कहा जा सकता है कि इसमें सांख्य, न्यायवैशेषिक, जैन यहाँ तक कि बौद्धों के शून्यवाद तक का प्रत्याख्यान शांकर सिद्धान्तानुसार है। इससे स्पष्ट होता है कि सांख्य आदि दर्शन पुराणों से पूर्व अस्तित्व में थे।

प्रस्तावना:
दार्शनिक ग्रन्थों के दार्शनिक विचारों की छाया पुराणों पर स्पष्ट दिखाई देती है। पुराणों में दर्शन ग्रन्थों के द्वारा निर्दिष्ट सृष्टि विद्या का विशेष अवलम्बन तथा आश्रयण तो लिया गया है परन्तु फिर भी पौराणिक सृष्टि दार्शनिक सृष्टि तत्त्व का अक्षरशः अनुवाद नहीं है। आचार्य बलदेव उपाध्याय का कहना समी चीन प्रतीत होता है कि–''पुराण अपनी मौलिकता से मण्डित हैं। यहाँ सभी दर्शनों का मंजुल सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है।''
प्रकृति और पुरुष के द्वैत का प्रतिपादक सांख्य और योग न्याय वैशेषिक के परमाणुओं के साथ मिलकर पौराणिक दर्शन सृष्टि उत्पत्ति की मूल भित्ति तैयार करता है, जिसका दार्शनिक ग्रन्थों से कुछ साम्य है, तो कुछ भिन्नता। पुराणों का उद्देश्य सरल भाषा में आख्यानों के द्वारा मनुष्यों को सन्मार्ग पर लाते हुए मोक्ष की ओर प्रेरित करना था। ईश्वर, जीव और प्रकृति के रहस्यों को समझाकर ईश्वर प्राप्ति के लिए कर्म करना तथा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रदर्शित करना था। अतः दर्शन ग्रन्थों से जितना आवश्यक और उपयोगी था, उतना विषय ग्रहण कर पुराणों ने अपना अभिप्रेत पूर्ण किया। यह प्रेरणा रुप कार्य तब तक सम्भव नहीं हो सकता था जब तक सृष्टि, सृष्टि उत्पत्ति के कारण, उपादान आदि का ज्ञान न हो। प्रक्रिया में ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों की अलग–अलग विशेष भूमिकायें हैं। ईश्वर, जीव, प्रकृति ये सभी अनादि हैं। सृष्टि के आरम्भ काल में ये तीनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु सृष्टि प्रक्रिया में ईश्वर की इच्छा होती हैं कि वे सृष्टि रचें, तब प्रकृति के सहारे ईश्वर अपनी शक्ति से ब्रह्माण्ड तैयार करता है इस प्रकार यह संसार रचा जाता है। जिस प्रकार सुनार सोने को लेकर कुण्डल बना देता है, जुलाहा सूत को लेकर कपड़ा तैयार कर देता है, उसी प्रकार ईश्वर, प्रकृति के सहयोग से अद्भुत संसार की रचना करता है। ईश्वर संसार का निर्माता/निमित्तकारण है। जबकि प्रकृति संसार निर्माण की आधारभूत सामग्री/उपादान कारण है। जीव संसार की उत्पत्ति का साधारण निमित्त कारण है। क्योंकि ईश्वर जीवों के भोग एवं मोक्ष हेतु प्रकृति से संसार की रचना करते हैं न कि शून्य या अभाव से।
अतः पुराणकारों ने इन सब विषयों का विस्तार से वर्णन किया। पुराणों में कहीं पर तो इन तीनों तत्त्वों को पृथक्–पृथक् स्वीकार किया गया है और कहीं पर जीव व माया को विष्णु के दो रुप माना है अर्थात् इनकी उत्पत्ति विष्णु की सत्ता पर आधारित है। विष्णु पुराण का स्पष्ट कथन है कि–''विष्णु के परम स्वरूप के प्रधान और पुरुष दो रुप हैं और विष्णु के एक तृतीय रुप कालात्मक रुप के द्वारा ये दोनों सृष्टि समय में वियुक्त होते हैं। भगवान् विष्णु कालशक्ति के द्वारा ही विश्व की सृष्टि तथा प्रलय किया करते है। अतः इस अध्याय में ''सर्ग'' सम्बन्धित विषयों में भिन्नता व साम्य का विवेचन किया जा रहा है।

सृष्टि के मूल कारणों में भिन्नता व साम्य :

प्रायः सभी दर्शनों में सृष्टि उत्पत्ति के मूल कारण के रूपों में ब्रह्मा या ईश्वर, जीव, पुरुष, प्रकृति अथवा परमाणु आदि तत्त्वों को स्वीकार किया गया है। इनके स्वरूप, विशेषताओं तथा इनके द्वारा सृष्टि आदि का विवेचन पुराणों में भी किया गया है। अतः देखना है कि दोनों प्रकार के ग्रन्थों में इन सर्ग सम्बन्धी उपादानों में क्या अन्तर अथवा समानताएँ हैं।

(क) ब्रह्मा या ईश्वर में एकता या भिन्नता:

ब्रह्मा ही समस्त सृष्टि का निमित्त व उपादान कारण है। दर्शनग्रन्थों व पुराणों में कहीं पर तो ब्रह्मा को सर्वोपरि सत्ता माना गया, कहीं ईश्वर को, तो कहीं ईश्वर को ही ब्रह्मा का रुप बताया गया हैं।

ब्रह्माा– इस शब्द की व्युत्पत्ति ''बृह्'' धातु से होती है जिसका अर्थ होता है बढ़ना या विस्तार को प्राप्त करना। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल में ब्रह्मा का वर्णन इस प्रकार किया गया है– जो इस संसार का उत्पन्न कर्ता, धारण कर्ता, पालनकर्ता, संहारकर्ता है और सब जीवों के हित में अनेक पदार्थों का निर्माण करता हैं वही ब्रह्म है। अथर्ववेद में भी कहा गया है कि वह ब्रह्मा ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश का मूल कारण है। भूत वर्तमान और भविष्यत् तीनों काल इसी में समाहित हैं।

पुराणों के अनुसार इसी वैदिक परम्परा को समेटते हुए विष्णु पुराण में ब्रह्मा को सृष्टि, स्थिति संहार के निमित्त क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन संज्ञाओं को धारण करने वाला कहा गया है। ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न होने के कारण इसे ही पुराणों में ब्राह्मी सृष्टि के नाम से जाना जाता है। जिस प्रकार उष्णता व लौहित्य एवं प्रकाश द्वारा दीपक का लक्षण किया जा सकता है ठीक उसी प्रकार सत्, चित् और आन्नद इन तीन शब्दों के माध्यम से ब्रह्मा का स्वरूप प्रतिपादित किया जाता है। श्रुति वाक्य इस विषय में प्रमाण है–

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मा।
विज्ञानमानन्दं ब्रह्मा।
आनन्दो ब्रह्मोति व्यजानात्।

छान्दोग्योपनिषद् भी इसे अद्वितीय और आदि सत्ता मानता है। श्री शंकराचार्य के अनुसार जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और नाश जिस सर्वज्ञ एवं शक्तिमान् कारण से होते हैं वह ब्रह्मा है। यही ब्रह्मा माया के द्वारा आवृत होने पर जब सविशेष या सगुण भाव को धारण करता है तब उसे ही ईश्वर कहते है इससे यह तो स्पष्ट होता है कि सृष्टि के आदि मूल ब्रह्मा को ही ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा आदि भिन्न–भिन्न नामों से कल्पित किया गया है यही वह मूल तत्त्व है जिसकी इच्छा से सम्पूर्ण जड़ व जङ्गम सृष्टि निज व्यापार में व्याप्त है जिसके स्परूप को समस्त दार्शनिक ग्रन्थों में स्वीकार किया गया हैं परन्तु इसके स्वरूप तथा सृष्टिक्रम में कहीं भिन्नता दृष्टिगोचर होती है तो कहीं साम्य।

ऋग्वेद का स्पष्ट कथन है कि ईश्वर के तप से ही ऋत और सत्य उत्पन्न हुए। उसी से रात्रि, प्रलय, उफनता समुद्र, यह सब जगत्, दिन और रात्रि उत्पन्न हुए। उसी से सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष आदि उत्पन्न हुए। वह परमेश्वर प्रत्येक कल्प में इसी प्रकार सृष्टि की रचना करता है। योगदर्शन ने भी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया इसका लक्षण इस प्रकार है–

''तत्र निरतिशयं सर्वबीजम्।''

ईश्वर के स्वरूप के बारे में कहा है कि क्लेश, कर्म, उनका फल तथा वासना और संस्कार से जिसका सम्पर्क नहीं है वह पुरुष विशेष ईश्वर है। सांख्य दर्शन ने सृष्टि उत्पत्ति में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसकी दृष्टि में विश्व निर्माण में प्रकृति और पुरुष का संयोग प्रमुख है।

भागवत् के अनुसार ज्ञान व क्रिया से ओतप्रोत एक मात्र ब्रह्मा अथवा ईश्वर ही अद्वितीय शक्ति है वही सकल जगत् का नियंता व संचालक है इसकी एक शक्ति माया है। जिसका आश्रय लेकर ही परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति, पालन, संहार करता है। वेद व पुराण ईश्वर को संसार का निमित्त कारण ही नहीं मानते अपितु उपादान कारण भी मानते हैं। क्योंकि जो सिद्धान्त वेदों का है वही पुराणों का भी है जिस प्रकार मकड़ी के जाले की सामग्री, मकड़ी की लार मकड़ी के शरीर में विद्यमान है, जिससे मकड़ी स्वयं जाल तान लेती है उसी

तरह ईश्वर से आई सामग्री के द्वारा इस संसार का निर्माण हुआ। इस मत का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार चेतन सारथि के बिना रथ की गति असम्भव है ठीक उसी प्रकार चेतन ईश्वर की प्रेरणा के बिना जड़ प्रकृति के द्वारा संसार रचना असंभव है।

पुराणों में माया के स्वरूप में भिन्नता :

पुराणों में विद्या व अविद्या का स्वरूप वेदान्त दर्शन की माया से थोड़ा भिन्न है। इसके अनुसार भगवान् विष्णु की पराशक्ति ही जगत् का कार्य सम्पादन कर रही है। भाव और अभाव इसी के स्वरूप है। यही भाव रुप से विद्या और अभाव रुप से अविद्या कहलाती है। जिस समय संसार और विष्णु दो भिन्न रुप प्रतीत होते है उस समय की स्थिति अविद्या सिद्ध होती हैं। जब ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, रुप की उपाधि नष्ट हो जाती है और सब रुपों में एक मात्र भगवान् विष्णु हैं ऐसी भावना बुद्धि में होने लगती है उस समय विद्या का प्रकाश होता है, वही अभेद बुद्धि कहलाती है।

सांख्य दर्शन में माया के स्थल पर प्रकृति को माना गया है। यह प्रकृति भी माया की भांति त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सत्वरजस्तमो रुप वाली है।

विष्णु पुराण में भी माया के स्थल पर प्रकृति को विष्णु का रुप माना गया है, इनके अनुसार प्रकृति अप्रमेय, अजर निश्चल, शब्द स्पर्शादिशून्य और रुपादि रहित है। वह त्रिगुणमय और जगत् का कारण है तथा स्वयं अनादि एवं उत्पत्ति और लय से रहित है। यह सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रलयकाल से लेकर सृष्टि के आदि तक उसी में व्याप्त था। पुराणों में आवरण और विक्षेप शक्ति शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता है, परन्तु इस तरह से कहा गया है कि– जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा में दो चन्द्रमाओं की तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश मण्डल के नक्षत्रों में राहु की भांति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझना चाहिए, जैसे मकड़ी अपने मुहँ से जाला निकालकर उसमें क्रीड़ा करती है और फिर उसे अपने में लीन कर लेती है, वैसे ही परमपिता परमेश्वर अपनी माया का आश्रय लेकर इस विविध शक्ति सम्पन्न जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं।

इस प्रकार दार्शनिक ग्रन्थों तथा पुराणों में वर्णित माया में कहीं समानता है तो कहीं भिन्नता। कहीं इसे ब्रह्मा या ईश्वर की शक्ति कहा है तो कहीं प्रकृति का ही भेद कहा हैं। कही वर्णित किया गया है कि ब्रह्मा या ईश्वर माया से ही सृष्टि उत्पत्ति करते हैं। सांख्य ने माया के स्थान पर प्रकृति को माना है तो विष्णु पुराण में भी प्रकृति को ही जगत् का कारण कहा है।

वेदान्त में प्रकृति के माया तथा अविद्या दो रुप है परन्तु पुराणों में विद्या तथा अविद्या विष्णु के ही रुप माने गये है। सांख्य की प्रकृति स्वतन्त्र है परन्तु माया स्वतन्त्र नहीं बल्कि ब्रह्मा या ईश्वर के आश्रित हैं। यह ईश्वर की सर्जक शक्ति है और जगत् का कारण है।

पारसनाथ द्विवेदी के अनुसार माया ज्ञानविरोधी भावरस पदार्थ हैं, अभाव रूप नहीं, क्योंकि ज्ञान से माया की निवृति होती हैं, यदि अभाव रूप है तो उसकी निवृति कैसी? भाव रूप होने पर ही निवृति सम्भव है। अतः माया भाव रुपा है, इस प्रकार माया को सदसदुभय रूप से विलक्षण 'यत्किञ्चित्' कहा जा सकता है।

दर्शनों एवं पुराणों में पुरुष व प्रकृति:

पुरुष– 'पुरुष' शब्द का अर्थ– हलायुध कोश में ''पुरुष'' शब्द की व्युत्पत्ति की गई है–

''पुरति अग्रे गच्छतीति पुरुषः।

बृहदारण्यकोपनिषद् में पुरों में शयन करने के कारण परमात्मा को ''पुरुष'' माना गया है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि–

''परात्परं पुरिषयं पुरुषमीक्षते''

अर्थात् साधक उपासना के द्वारा उस परमात्मा पुरी (शरीर रूप नगर) में शयन करने वाले परमपुरुष को साक्षात करता है।

पुराणों के अनुसार:

उपर्युक्त वर्णन से साम्य रखता हुआ वर्णन भागवत पुराण में उपलब्ध होता है। जो मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता आदि के शरीर रुप पुरों की रचना करके उन पुरों में जीव रुप से शयन करता है वह पुरुष है।

ऋग्वेद के अनुसार सम्पूर्ण जगत् पुरुष की महिमा का ही विस्तार है। समस्त विश्व इस पुरुष का चतुर्थांश मात्र है और तीन अंश जिसे त्रिपाद पुरुष कहा जाता है, जो अविनाशी है तथा प्रकाश स्वरूप अपनी महिमा में स्थित है।

उपर्युक्त वैदिक परम्परा को समेटते हुए पुराणों में पुरुष को सृष्टि का मूल कारण परम ब्रह्मा माना है। अव्यक्त और व्यक्त (महदादि) इसके अन्य रुप है तथा (सबको क्षोभित करने वाला होने से) काल उसका परम रुप है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मा को ''ब्रह्मा'' कहा गया है। इसी आधार पर मत्स्य पुराण में कहा गया है कि जो पुरुष नाम से विख्यात है वह पुरुषोत्तम ही ब्रह्मा है। सांख्य दर्शन व पुराणों में पुरुष को मूल कारण के रूप में स्वीकार किया गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष का सृष्टि उत्पत्ति में समान रुप से सहयोग है। सांख्य के अनुसार अचेतन प्रकृति और उनके द्वारा जनित् जगत् त्रिगुणात्मक, परस्पर अभिन्न, विषय, साधारण, अचेतन तथा परिणामी है, इसके अतिरिक्त पुरुष त्रिगुणातीत, पृथक्, अविषय, असामान्य, चेतन, अपर्सवधर्मी (किसी अन्य को उत्पन्न न करने वाला) तथा निष्क्रिय है। पुरुष चेतन होने के कारण ही द्रष्टा है और अविषय होने के कारण ही साक्षी है। लोक व्यवहार में जैसे वादी तथा प्रतिवादी अपने विवाद को साक्षी को दिखाते हैं उसी प्रकार प्रकृति भी स्वकृत कार्यों को पुरुष के सामने रखती है। इसी कारण पुरुष साक्षी है। पुरुष सुख–दुख एवं मोह से रहित है। अतः उसका कैवल्य स्वतः सिद्ध है। सांख्य में यह स्पष्ट है कि वह प्रकृति द्वारा ही बन्धन ग्रस्त होता है तथा प्रकृति के द्वारा ही बन्धन मुक्त होता है। इस प्रकार सांख्य में पुरुष को ही सर्वोपरि सत्ता कहा गया है।

पुराणों के अनुसार:

पुराणों के अनुसार पुरुष भगवान् विष्णु का ही एक रुप है वह विष्णु के द्वारा क्षोभित किये जाने पर ही सृष्टि उत्पत्ति में प्रवृत होता है। पुराणों में पुरुष को अनादि कहा गया है। पुरुष का साम्य उस निर्विकार आकाश से किया गया है, जिसमें मेघ, अन्धकार और प्रकाश उद्भूत और अन्तर्भूत होते हैं, परन्तु आकाश उनसे अलिप्त ही रहता है। ऐसे ही परम पुरुष में त्रिगुणादि शक्तियां कभी प्रकट और कभी अन्तर्निहित होती हैं, किन्तु परमपुरुष अविकारी ही बना रहता है। पुरुष की उपमा ऐसे कृषक से दी है, जो फसल को बोने–पकने और काटने आदि का साक्षी तो है परन्तु फिर भी उससे पृथक् है वैसे ही पुरुष भी सृष्टि उत्पत्ति की विभिन्न अवस्थाओं का साक्षी होते हुए भी निरपेक्ष है। वह गुणों से परे है। इस प्रकार सांख्य दर्शन में वर्णित पुरुष को सर्वोपरि सत्ता माना गया है, परन्तु पुराणों में उसे परमपिता परमेश्वर का ही एक रुप कहा गया है, इस भिन्नता के होते हुए भी पुराणों व दार्शनिक ग्रन्थों में वर्णित पुरुष के स्वरूप में साम्य दृष्टिगोचर होता है।

प्रकृति– सांख्य व योग तथा पुराणों के अनुसार प्रकृति जगत् का मूल कारण है। **''प्रकर्षेण क्रियते यया सा''** इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह महदादि तत्त्वों की उत्पादिका है। अतः इसका प्रकृति नाम सार्थक है। ऋग्वेद में कहा गया है कि–

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठे वदंस्थारजिम्।
नियीते अस्ययोजना विं सुक्रतुः।

अर्थात् प्रकृति के सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों के द्वारा परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है। प्रकृति जड़ होने से स्वयं अपने आप सृष्टि उत्पन्न करने में असमर्थ है। **पैग्लोपनिषद के अनुसार**– सर्वप्रथम ब्रह्मा से लाल (सत्), कृष्ण (तम्) श्वेत (रज) वर्ण की तीन प्रकाश किरणों या गुणों वाली प्रकृति उत्पन्न हुई।

पुराणों के अनुसार:

उपर्युक्त वैदिक परम्परा को समेटते हुए कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण में सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहा गया है।

'प्रकृति' शब्द में जो ''प्र'' है वह प्रकृष्ट का द्योतक है तथा जो ''कृति'' शब्द है, वह सृष्टि का वाचक है। सृष्टि में जो प्रकृष्ट देवी है वही प्रकृति के नाम से अभिहित है।

विष्णु पुराण ने अव्यक्त कारण का जो सदसद्रूप और नित्य है उसे प्रधान तथा सूक्ष्म प्रकृति कहा गया है। वह प्रधान या प्रकृति क्षयरहित, निराधार, अप्रमेय, अजर, निश्चल शब्द स्पर्शादि शून्य और रूपादि रहित है। वह स्वयं त्रिगुणमय और जगत् का कारण है तथा स्वयं अनादि एवं उत्पत्ति और विनाश से परे है, यह सम्पूर्ण प्रपंच उसी में व्याप्त है।

मार्कण्डेय पुराण व **नारद पुराण** में भी प्रकृति के इसी स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है केवल उनकी पदावली में भिन्नता दिखाई पड़ती है। भौतिक तत्त्वों को लीन करने के कारण इसे प्रधान भी कहा गया है। सांख्य मनीषि आचार्य उदयवीर शास्त्री ने 'प्रकृति' और 'प्रधान' पदों के अर्थ की उद्भावना करते हुए कहा है कि जिस साधन से यह समस्त जगत् उत्पन्न किया जाता है वह प्रकृति है और जिसमें समस्त जगत लीन होता है वह प्रधान है। इनके अनुसार प्रधान पद प्रलय अवस्था की ओर संकेत करता है।
भागवत पुराण के अनुसार–**प्राकृत सर्ग** पांच प्रकार का है– महत्, अहंकार, भूत, इन्द्रियों का सर्ग, इन्द्रियधिष्ठाता देवता और अविद्या। यह सांख्य के प्रत्यय सर्ग के समान है, परन्तु प्रत्यय सर्ग में केवल महत्तत्व की सत्ता बताई गई है।

वैकृत सर्ग– स्थावरों का सर्ग, तिर्यक् सर्ग, मानुष सर्ग आदि भेदसे तीन प्रकार का माना गया है। सांख्य में ये सर्ग स्थूल सर्ग में बताये गये है।

प्राकृत–वैकृत:
''कौमार सर्ग'' नामक एक ही प्रकार का कहा गया है। कुछ अन्य विद्वानों ने सृष्टि के प्रकारों को चार अंगों में भी विभाजित किया है– प्राकृतिक, ब्राह्मी, मानसी व मैथुनी। इस प्रकार पुराणों में वर्णित सृष्टि प्रक्रिया का दार्शनिक सृष्टि प्रक्रिया से किञ्चित अन्तर है।सांख्य दर्शन में जिसे तीन भागों में विभक्त किया गया है। पुराणों में उसे ही नौ और दस भागों में विभक्त किया है।

अवतारवाद:
पुराणों में दार्शनिक ग्रन्थों की अपेक्षा एक विशेषता दृष्टिगोचर होती है– वह है अवतारवाद, जो दार्शनिक ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। यह तो स्पष्ट है कि सृष्टि के बाद प्रलय भी होता है। ब्रह्मा से लेकर तिनके तक जितने प्राणी या पदार्थ होते हैं, उनके जन्म लेने का क्रम चलता रहता है अर्थात् नित्य प्रवाह से सृष्टि तथा प्रलय होता ही रहता है। ऐसा प्रायः सभी दर्शन तथा पुराण स्वीकार करते है, परन्तु केवल पुराणों में ही इस बात की चर्चा है कि भगवान् युग–युग में पशु–पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदि के रूप में अवतार ग्रहण कर अनेक लीलाएँ किया करते हैं। इन अवतारों के द्वारा वे वेदत्रयी और वेदधर्म से विरोध करने वाले व्यक्तियों का संहार भी किया करते हैं। इस कारण भगवान् की यह अवतार लीला विश्व की रक्षा के लिये ही होती है। पुराणों में कहीं 24 अवतारों का वर्णन है तो कही 14 अवतारों का वर्णन है, कहीं 10 अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है–

मत्स्यंकूर्मवाराहंनारसिंहचवामनम्।
रामंरामंचकृष्णंचबुधंकल्किस्मृता।।

अर्थात मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि ये दस अवतार प्रमुख है। ये पृथ्वी पर जीवन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को दर्शाते हैं। अवतारों में सबसे पहला मत्स्यावतार हुआ, फिर जल थल दोनो पर वास करता हुआ कूर्म अवतार माना जाता है, इसके बाद वराह अवतार तत्पश्चात् मानव और सिंह का मिला जुला रूप नरसिंह अवतार कहा जाता है। इसके बाद पूर्ण विकसित मानव सामने आता है, जिसे वामनावतार कहा जाता है। मानव ने पहला महत्त्वपूर्ण हथियार कुल्हाड़ी बनाया, जिसकी झलक जमदग्नि पुत्र परशुराम अवतार में मिलती है। रामावतार से यह लक्षित होता है कि उनके सामने परशुराम मन्द पड़ जाते हैं, क्योंकि राम अपने समय के सबसे तेजस्वी धनुर्धर थे। बलराम का अवतार विकास की अगली अवस्था दर्शाता है। यह आठवां अवतार माना जाता है। मनुष्य के मन में मनोरंजन भाव आया, तब हुआ कृष्णावतार जिसके साथ बांसुरी का सम्बन्ध है– दसवां अवतार जो भविष्य में होने वाला है, वह कल्कि अवतार है अथवा जो अवतरित हो चुका है। इन अवतारों से हमें यह भी बोध होता है कि इनमें सर्जन और विनाश दोनों तरह की शक्तियाँ सन्निहित है, जिनका वर्णन रामायण और महाभारत में तथा पौराणिक कथाओं में हुआ है। इस प्रकार ईश्वर मत्स्य और वराह अवतार लेकर सृष्टि उत्पत्ति में सहयोग देते है और अन्य अवतारों में प्राणि मात्र की रक्षा करते हैं। अन्य धर्मावलम्बियों में भी रूपान्तर से अवतार तत्त्व का विचार पाया जाता है जैसे– बौद्ध धर्म में बुद्ध का अवतार, जैन धर्म में तीर्थंकरों का अवतार, इस्लाम धर्म में पैगम्बरों का, ईसाई धर्म में ईसामसीह को ईश्वर के पुत्र रूप

में मानना इसी अवतारवाद का पोषक है। इससे यह सिद्ध होता है कि संसार के सभी धर्मावलम्बी किसी न किसी रूप में अवतार तत्त्व को मानते हैं, परन्तु दार्शनिक ग्रन्थ अवतार वाद को नहीं मानते।

निष्कर्ष:

इस प्रकार सृष्टि के मूल कारण परब्रह्मा को दार्शनिक ग्रन्थों में ईश्वर पुरुष आदि भिन्न–भिन्न रुपों में अभिहित किया गया है। पुराणों में इसे ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि नामों से अभिहित किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि पुराणों व दार्शनिक ग्रन्थों सभी ने सृष्टि के मूल में एक चेतन तत्व की सत्ता को स्वीकार किया है। वेदान्त ने माया को ब्रह्मा की शक्ति कहा है तो सांख्य ने माया के स्थल प्रकृति को मूल तत्व माना है। क्योंकि प्रकृति भी माया की भांति त्रिगुणात्मिका है। विष्णु पुराण में माया के स्थान पर प्रकृति को विष्णु रुप माना गया है। भागवत व वेदान्त में कहा गया है कि परमपिता परमात्मा ने माया का आश्रय लेकर ही जगत् की उत्पत्ति, पालन, संहार किया है। सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष को ही सर्वोपरि सत्ता माना गया है परन्तु पुराणों में इन्हें परमपिता परमेश्वर का ही रुप कहा गया है, इस भिन्नता के होते हुए भी पुराणों व दार्शनिक ग्रन्थों में वर्णित पुरुष के स्वरुप में साम्य दृष्टिगोचर होता है। दार्शनिक ग्रन्थों में जीव को अनादि माना गया है, परन्तु पुराणों में इसे भगवान् से उत्पन्न कहा गया है। न्याय, वैशेषिक तथा मीमांसा आदि दर्शन परमाणुवाद को जगत् का उपादान मानते है तो सांख्य पुरुष व प्रकृति को मानते है और वेदान्त समस्त जगत् को ब्रह्मा का विवर्त कहता है। पुराणों में कहीं परमाणुओं से, तो कहीं पुरुष व प्रकृति से, कही ब्रह्मा से जगत् की उत्पत्ति को दर्शाया गया है परन्तु कहीं पुरुष को ब्रह्मा का ही रुप कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों में वर्णित पुरुष, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, महेश एक ही सत्ता के भिन्न–भिन्न नाम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, पृ0 357
2. भारतीय दर्शन, पारसनाथ द्विवेदी, पृ0 372
3. चिदानन्दमय ब्रह्माप्रतिबिबंसमन्विता।
4. तमोरजः सत्त्वगुणा प्रकृतिद्विविधा।। पञ्चदशी 1/5
5. नारद पुराण 2/43
6. भारतीय दर्शन, पारस नाथ द्विवेदी पृ0 372
7. हलायुध कोश पृ0 439
8. सांख्य तत्त्व कौमुदी, का–19, पृ0 217
9. गौडपाद भाष्य, का.–9 पृ0 19
10. ईशाद्यण्टोत्तरशतोपनिषद्– 62 पैग्लोपनिषद् 1/2–3
11. उद्धृत, भारतीयदर्शन, द्वितीय भाग, डा. राधाकृष्णन तत्त्वत्रय, लोकाचार्य पृ0 48
12. ऋषि दयानन्द की दृष्टि में जीव का परिणाम (गुरूकुल पत्रिका, मार्च (2006)
13. भारतीय दर्शन का इतिहास, हरिदत्त शास्त्री पृ0 261
14. अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति। मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः।। सांख्यकारिका, का. 53